Volume 3; Issue 1
January to March 2026
E-ISSN: 3048-6742

Sanskriti-Samvahika
संस्कृति-संवाहिका

Peer Reviewed Indexed Refereed Journal

Quarterly Journal

Sanskriti-Samvahika संस्कृति-संवाहिका

E-ISSN: 3048-6742

https://sanskritisamvahika.in

Volume 3; Issue 1; January to March, 2026; Page No. 1-12

Peer Reviewed, Indexed and Refereed Journal

महावाक्यों एवं अवान्तर वाक्यों की शास्त्रीय प्रासंगिकता एवं महत्त्व

डॉ. ममता स्नेही

सहायक प्राध्यापिका

विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग

ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार

Email : mamatasnehi111@gmail.com

सारांश

उपनिषदिक महावाक्य वेदान्त दर्शन के वे केन्द्रीय, सारगर्भित और गहन वाक्य हैं, जो आत्मा और ब्रह्म (परम सत्य) की एकता को प्रतिपादित करते हैं। ये चारों वेदों से लिये किये हैं जो अद्वैत वेदान्त दर्शन की सर्वोच्च आध्यात्मिक गहनता को प्रकट करते हैं। महावाक्य का अर्थ है- 'महान् वाक्य' या 'वेद के अन्तिम भाग' (वेदान्त) से प्राप्त गहन दार्शनिक सूत्र, जो जीव (आत्मा) और ब्रह्म की एकता को दर्शाते हैं, जो "वसुधैव कुटुम्बकम्" के शाश्वत संदेश हैं। अद्वैत वेदान्त दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है - ब्रह्मज्ञान। निष्कर्ष रूपेण यह कहा जा सकता है कि महावाक्य वैष्णव और वेदान्त के विचारों का सुन्दर तालमैल प्रस्तुत करते हैं, जो यह सिखाता है कि सत्य एक है, भले ही उसे अलग-अलग नामों से पुकारा जाए। यह सूत्र आज के संघर्षमय विश्व में शान्ति, प्रेम और सहा-अस्तित्व के लिए अत्यन्त तो आवश्यक है ही, साथ ही ये महावाक्य वासनाओं को क्षीण करके, जीव को जीते-जी बन्धन से मुक्ति (जीवनमुक्ति) का मार्ग दिखाते हैं।

प्रमुख शब्द – *अखण्डतात्पर्यार्थ, महावाक्य, अवान्तरवाक्य, लक्षणावृत्ति, जहदजहल्लक्षणा, भागत्यागलक्षणा, तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि।*

उपनिषदिक महावाक्य वेदान्त दर्शन के वे केन्द्रीय, सारगर्भित और गहन वाक्य हैं, जो आत्मा और ब्रह्म (परम सत्य) की एकता को प्रतिपादित करते हैं। ये चारों वेदों से लिये किये हैं जो अद्वैत वेदान्त दर्शन की सर्वोच्च आध्यात्मिक गहनता को प्रकट करते हैं। महावाक्य का अर्थ है- 'महान् वाक्य' या 'वेद के अन्तिम भाग' (वेदान्त) से प्राप्त गहन दार्शनिक सूत्र, जो जीव (आत्मा) और ब्रह्म की एकता को दर्शाते हैं, जो "वसुधैव कुटुम्बकम्" के शाश्वत संदेश हैं। अद्वैत वेदान्त दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है - ब्रह्मज्ञान। यद्यपि ब्रह्म को वेदान्त परम्परा में अवाङ्मनसगोचर कहा गया है, अतः ब्रह्मज्ञान के लिए वस्तुतः किसी भाषा की सहायता नहीं ली जा सकती तथापि शास्त्रचर्चा एवं उपदेश का विषय बनाते हुए इसमें भाषिक संरचना का समावेश कराया गया है। शङ्कराचार्य स्वयं इसे उपनिषद् के महावाक्यों द्वारा अभिहित करने का आख्यान करते हैं। महावाक्य से तात्पर्य उपनिषद् के उन वाक्यों का निर्देश है जो स्वरूप में लघु हैं, परन्तु ये वाक्य अपने में बहुत ही गहन विचार को समाहित किये हुए हैं। प्रमुख उपनिषदों में से निम्नलिखित वाक्यों को महावाक्य की श्रेणी में रखा गया है –

1- अहं ब्रह्मास्मि[i] (अनुभव वाक्य) - यजुर्वेद

2- तत्त्वमसि[ii] (उपदेश वाक्य) - सामवेद

3- अयम् आत्मा ब्रह्म[iii] (उपदेश वाक्य) - अथर्ववेद

4- प्रज्ञानं ब्रह्म[iv] (उपदेश वाक्य) - ऋग्वेद

प्रत्येक वेद से एक ही महावाक्य लेने पर उपरोक्त चार ही महावाक्य माने गये हैं, किन्तु वेद ऐसे अनेक गूढ़ वाक्यों से भरे हुए हैं, इसलिए इनके अतिरिक्त भी कई वाक्यों को महावाक्य या उनके समकक्ष माना गया है।

5- सर्वं खल्विदं ब्रह्म[v] - सामवेद

उपनिषद् के ये महावाक्य निराकार ब्रह्म और उसकी सर्वव्यापकता का परिचय देते हैं। ये महावाक्य उद्घोष करते हैं कि मनुष्य देह, इन्द्रिय और मन का संघटन मात्र ही नहीं है, बल्कि वह सुख-दुःख, जीवन-मरण से परे दिव्यस्वरूप आत्मतत्त्व है। आत्मभाव से मनुष्य जगत् का द्रष्टा भी है और दृश्य भी। जहाँ-जहाँ ईश्वर की सृष्टि का आलोक व विस्तार है, वहीं-वहीं उसकी पहुँच है। वह परमात्मा का अंशीभूत आत्मा है। यही जीवन का परम् पुरुषार्थ है। उपनिषद के ये महावाक्य मानव जाति के लिए महाप्राण, महौषधि एवं संजीवनी बूटी के समान हैं, जिन्हें हृदयंगम

कर मनुष्य आत्मस्थ हो सकता है, 'स्वस्थ:' अर्थात् (**स्वस्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थः**) स्व में स्थित हो सकता है। यह महावाक्यों के अर्थावबोध से ही सम्भव है।

महावाक्यार्थ का बोध तत्त्वम्पदार्थशोधन पर निर्भर है, तत्त्वम्पदार्थशोधन अवान्तर वाक्यों पर आश्रित है, अतः महावाक्यों के अर्थ निर्धारण के क्रम में महावाक्यों के स्पष्ट और विशेष अर्थबोध के लिए अवान्तर वाक्यों के अर्थ सर्वप्रथम व्याख्येय हैं क्योंकि **'तत्त्वमसि'** इस महावाक्य के पदार्थ और वाक्यार्थ दोनों ही निरूपणीय हैं। अतः पदलक्ष्यनिरूपण के प्रसंग में अवान्तर वाक्य के द्वारा पदार्थ का निरूपण किया गया है क्योंकि पदार्थज्ञानपूर्वक ही वाक्यार्थज्ञान होता है। इसकी पुष्टि के लिए यह तर्क पर्याप्त है कि ब्रह्मसूत्र में भी समन्वयसूत्र से पूर्व जन्मादि सूत्र को रखा गया है। यह भी एक प्रकार का भाषादर्शन ही है कि किस क्रम से सूत्रों का प्रस्तुतिकरण किया जाए ताकि महावाक्यगत अखण्डार्थ का समन्वय प्राप्त हो। अतः सूत्रकार का सूत्ररचनाक्रम भी मननयोग्य है। उन्होंने उपदेशात्मक त्वम्पदार्थ का समन्वय **'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'** सूत्र से किया है, तत्पश्चात् द्वितीयसूत्र **'जन्माद्यस्य यतः'** से तत्पदार्थ का समन्वय तथा उसमें उत्पत्तिस्थितिलयकारणतारूपी युक्ति, तदनन्तर तृतीयसूत्र **'शास्त्रयोनित्वात्'** से जगत्कारण में सर्वज्ञत्वादि का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् **'तत्तु समन्वयात्'** इस चतुर्थसूत्र द्वारा महावाक्यगत समन्वय का निपूर्णतम वर्णन है[vi]। **'वाक्यार्थज्ञाने पदार्थज्ञानं कारणम्'** इस नियम के अनुसार तत्त्वम्पदार्थबोध कराने के लिए वेदव्यास ने पहले तीन सूत्रों की रचना की। तत्पश्चात् वाक्यार्थरूप अखण्डार्थबोध कराने के लिए समन्वयार्थक चतुर्थ सूत्र को प्रस्तुत किया। समन्वय सूत्र द्वारा यह सिद्ध होता है कि वाक्य सिद्धार्थ का बोध करा सकता है, वाक्य कार्यरहित अर्थ को कह सकता है, वाक्य अखण्डार्थ का बोध करा सकता है और परमपुरुषार्थरूप मोक्षप्रद ज्ञान को भी वेदान्तवाक्य समर्पित कर सकता है[vii]।

अवान्तर वाक्यों का निरूपण – ब्रह्म और आत्मा के एकत्व के प्रतिपादक महावाक्यों के 'तत् और त्वम्', 'अहं और ब्रह्म' पदों के अर्थ को स्पष्ट रूप से बताने वाले उपनिषद् के वाक्यों को अवान्तर वाक्य कहते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो अवान्तर वाक्य महावाक्यों के अर्थनिर्धारण में सहायक होते हैं।

तत् पद प्रतिपादक अवान्तर वाक्य –

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"[viii], "आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्"[ix] - ये दो अवान्तर वाक्य साक्षात् रूप से ब्रह्म (तत्) पद के अर्थ को निरूपित करते हैं और ब्रह्म के स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं[x] अर्थात् ये अवान्तर वाक्य स्पष्ट रूप से यह

बताते हैं कि ब्रह्म सत्य स्वरूप, ज्ञान स्वरूप, अनन्त स्वरूप और आनन्द स्वरूप है। अनृत, जड़, परिछिन्न तथा दु:ख विरुद्ध वस्तु का अवान्तर वाक्यों में सत्य, ज्ञान, अनन्त और आनन्द शब्दों के द्वारा ब्रह्म शब्द के अर्थ का प्रतिपादन किया जाता है।

इस प्रकार 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'[xi] और 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्'[xii] - यह अवान्तर वाक्य कहे गये हैं[xiii]। सत्य होने से ब्रह्म अनृत नहीं है अर्थात् मिथ्या नहीं है[xiv]। सत् वही हो सकता है, जो अनृत नहीं हो और न शून्य हो। जो पदार्थ जिस रूप से निश्चिय किया गया है, उससे व्यभिचरित न होने के कारण सत्य कहलाता है[xv]। ब्रह्म भी यदि अनृत या शून्य हो तो जगत् की सृष्टि निराधार होगी। अत: ब्रह्म अनृत या शून्य नहीं हो सकता। ज्ञान स्वरूप होने से ब्रह्म जड़ नहीं है[xvi], क्योंकि ज्ञान चेतन में ही होता है, जड़ में नहीं[xvii]। ब्रह्म को 'चित्' कहा गया है। चित् का अर्थ है - ज्ञान[xviii], चैतन्यस्वरूप या ज्ञप्तिस्वरूप। चैतन्य ब्रह्म का गुण नहीं है, प्रत्युत् उसका स्वरूप ही है क्योंकि "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इस अवान्तर वाक्य में ज्ञान और ब्रह्म का समानाधिकरण्य है और ब्रह्म की निर्धर्मकता (सर्वगुणराहित्य) का श्रुतियों में सर्वत्र प्रतिपादन किया गया है[xix]। अनन्त होने से ब्रह्म सीमित नहीं है[xx] अर्थात् वह तीनों भेदों से रहित है। ब्रह्म को सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदशून्य कहा गया है। जिस प्रकार वृक्ष का पत्र, पुष्प, फलादि के द्वारा स्वगत भेद होता है, दूसरे वृक्ष से सजातीय भेद होता है और शिला इत्यादि से विजातीय भेद होता है, उसी प्रकार 'एकम्' से ऐक्य, 'एव' से अवधारणा तथा 'अद्वितीयम्' से द्वैत निषेध के द्वारा ब्रह्म में इस भेदत्रैविध्य का निराकरण किया गया है[xxi]। सद् वस्तु के अवयवों का श्रुति में कहीं भी वर्णन नहीं हुआ है, क्योंकि सावयव होने पर अन्य सावयव पदार्थों के समान ब्रह्म अनित्य, सीमित और सविकार सिद्ध होगा। इसलिए निरवयव होने के कारण उसमें स्वगत भेद नहीं है। सत् के समान कोई अन्य सत् है ही नहीं। अत: सद् में सजातीय भेद भी नहीं हो सकता। सद् का विजातीय असत् ही हो सकता है और असत् का अर्थ है - सत्ताहीन। जिसकी सत्ता ही नहीं है, उससे भेद कैसा ? अत: विजातीय भेद भी नहीं बन सकता। ब्रह्म के आनन्दरूप होने से[xxii], वह दु:ख रूप हो नहीं सकता अत: उसे दु:खरहित कहा गया है। इसप्रकार उपरोक्त वाक्य ब्रह्म की अनन्तता के प्रतिपादन के लिए प्रेरणार्थक विधि, प्रतिषेध और शेषभूत स्तुति, निन्दा, अर्थवाद वाक्यों की तरह सृष्टि, स्थिति, प्रलय, प्रवेश और नियमन - ये पाँच प्रकार के युक्ति और अर्थवाद वाक्य कहे गये हैं[xxiii]।

1. **सृष्टिपरक अवान्तर वाक्य -**

तैत्तिरीयोपनिषद् में पठित "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"[xxiv] अर्थात् जिससे यह सम्पूर्ण प्राणी वर्ग उत्पन्न होता है, यह सृष्टिपरक वाक्य है[xxv] । इस श्रुति वाक्य में ब्रह्मतत्त्व से स्थावर-जंगम जगत् की सृष्टि कही गयी है । इससे सृष्टि रूप कार्य के प्रति ब्रह्म की उपादान कारणता सिद्ध होती है । जिस प्रकार मृत्तिका से निर्मित घटादि मृत्तिका से भिन्न नहीं है और मृत्तिका उन सब के प्रति उपादानकारण भी है, उसी प्रकार यह सृष्टि ब्रह्म रूप एक तत्त्व से बनी है और उसी ब्रह्म की सृष्टि रूप कार्य के प्रति उपादान कारणता भी है[xxvi] ।

2. **स्थितिपरक अवान्तर वाक्य -**

तैत्तिरीयोपनिषद् में पठित "येन जातानि जीवन्ति"[xxvii] अर्थात् उत्पन्न होने पर जिसके आश्रय से ये जीवित रहते हैं, यह प्रवेशवाक्य है । इस श्रुतिवाक्य से ब्रह्म की स्थितिप्रदायकता सिद्ध होती है । ब्रह्म समस्त कार्यभूत जगत् का अधिष्ठान है - यह इस अवान्तर वाक्य से सिद्ध होता है[xxviii] ।

3. **लयपरक अवान्तर वाक्य -**

तैत्तिरीयोपनिषद् में पठित "यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति"[xxix] अर्थात् समस्त कार्यजगत् विनाशोन्मुख होकर, जिसमें लीन होता है, यह प्रलयवाक्य है । इस श्रुति वाक्य से ब्रह्म की लय कारणता सिद्ध होती है । जिस प्रकार घट रूप कार्य अपने मृत्तिका रूप कारण में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार समस्त कार्यभूत जगत् स्थिति के अनन्तर अपने कारण ब्रह्म में लय को प्राप्त हो जाता है[xxx] ।

4. **प्रवेशपरक अवान्तर वाक्य -**

तैत्तिरीयोपनिषद् में पठित "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्"[xxxi] अर्थात् वह उसकी रचना कर उसी में प्रविष्ट हो गया, यह प्रवेश वाक्य है[xxxii] । वह ब्रह्म तत्त्व एक और सर्वव्यापक है । अत: उसी से उद्भूत मायिक कार्य जगत् में वह प्रविष्ट हुआ, ऐसा प्रतीत होता है । भेद की दृष्टि से कार्य जगत् ब्रह्म से भिन्न है, परन्तु अभेद की दृष्टि से सर्वव्यापक होने से ब्रह्म के अतिरिक्त उसकी सत्ता नहीं है ।

5. **नियमनपरक वाक्य -**

तैत्तिरीयोपनिषद् में पठित "भीषास्माद्वात: पवते । भीषोदेति सूर्य:"[xxxiii] अर्थात् जिसके भय से वायु बहती है, जिसके भय से सूर्य उदय होता है - यह नियमन वाक्य है[xxxiv] । ब्रह्म सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियामक है । वह अपने नियमन रूप कार्य के

लिए वायु आदि देवगणों को भी कार्य पर लगाता है। यदि वे देवगण कार्य को समुचित रूप से नहीं करते हैं, तब उनको नियमन रूप भय दिखाया जाता है[xxxv]। जिस प्रकार राजा के मन्त्री अपने-अपने कार्य के प्रति उत्तरदायी होते हैं, उसी प्रकार देवगण भी ब्रह्म रूप राजा के निर्देशन में अपना-अपना कार्य करते हैं। वायु आदि देवगण समर्थ होने पर भी अत्यन्त श्रम साध्य चलने आदि के कार्य में नियमानुसार प्रवृत्त हो रहे हैं, यह बात उनका कोई शासक होने पर ही सम्भव है क्योंकि उनकी नियम से प्रवृत्ति होती है। इसीलिए उनके भय का कारण और उन पर शासन करने वाला ब्रह्म ही है। जिस प्रकार राजा के भय से सेवक अपने-अपने कार्य में लगे रहते हैं उसी प्रकार वे इस ब्रह्म के भय से प्रवृत्त होते हैं। उनके भय का कारण वह आनन्दस्वरूप ब्रह्म है[xxxvi]।

इन पाँच प्रकार के सम्भावना और अर्थवाद वाक्यों से तेजस्, अप् और अन्नादि के क्रम से सारा जगत् उस ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है, इसीलिए तज्ज है। उत्पत्ति क्रम के विपरीत क्रम से उस ब्रह्म में लीन होता है अर्थात् तादात्म्य रूप से उसमें मिल जाता है इसीलिए तल्ल है। अपनी स्थिति के समय उसी में अनन या प्राणन यानि चेष्टा करता है इसलिए तदन है[xxxvii]। इन युक्तियों से जहाँ एक ओर ब्रह्म की अनन्तता की सिद्धि होती है, वही दूसरी ओर ब्रह्म पद का अर्थ भी निश्चित होता है[xxxviii]।

अविद्यानिवृत्ति एवं स्वस्वरूपानन्दावाप्ति - ये दो वेदान्त के परम प्रयोजन हैं, जिसमें ब्रह्मसम्बन्धी अविद्यानिवृति शास्त्रज्ञान से ही सम्भव है – **"शास्त्रं हि प्रत्यगात्मनि अविद्याध्यारोपितमतद्धर्मं निवर्तयत्येव केवलम्, न तु तं कर्मी करोति"** अर्थात् भाषा या शास्त्र साक्षात् रूप से ब्रह्मज्ञान तो नहीं करवा सकता, किन्तु ब्रह्मसम्बन्धी अज्ञान-निवृत्ति कर ब्रह्म में अविद्या द्वारा आरोपित अतद्धर्मों को निवृत्त अवश्य करता है[xxxix]। इसप्रकार भाषा ब्रह्मज्ञान में सहायक बनती है। इसलिए ही अद्वैत वेदान्त में शास्त्र या भाषा को बहुत महत्त्व दिया गया है। शास्त्र के अतिरिक्त किसी अन्य साधन से ब्रह्मविषयक अज्ञान की निवृत्ति सम्भव नहीं है। यह अज्ञाननिवृत्ति महावाक्यों के अर्थनिर्धारण द्वारा अखण्ड तात्पर्यार्थ को समझने पर ही होती है। **"वाक्यार्थविचारणाध्यवसाननिर्वृत्ता हि ब्रह्मावगतिः"** अर्थात् वाक्यार्थ विचार द्वारा निश्चित तात्पर्य से ब्रह्मावगति (ब्रह्मज्ञान) निष्पन्न होती है, ब्रह्मसूत्रभाष्य के इस वचन का तात्पर्य यह है कि ब्रह्मज्ञान वेदान्त के महावाक्यों से गम्य है, अनुमानादि से नहीं।

महावाक्यों की शास्त्रीय प्रासंगिकता एवं महत्त्व –

अद्वैत वेदान्त दर्शन में स्वस्वरूपानन्दावाप्ति - ये वेदान्त का परम् प्रयोजन हैं, जिसकी प्राप्ति हेतु अविद्यानिवृत्ति आवश्यक है। ब्रह्मसम्बन्धी अविद्यानिवृत्ति शास्त्रज्ञान से ही सम्भव है। शास्त्र के अतिरिक्त किसी अन्य साधन से इस ब्रह्मविषयक अज्ञान की निवृत्ति सम्भव नहीं है अर्थात् शास्त्र साक्षात् रूप से ब्रह्मज्ञान तो नहीं करवा सकता किन्तु महावाक्यों के अर्थ-निर्धारण द्वारा ब्रह्मसम्बन्धी अज्ञान-निवृत्ति करवा कर ब्रह्म में अविद्या द्वारा आरोपित अतद्धर्मों को निवृत्त अवश्य करता है[xl] । 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यों के केवल पदार्थबोध से ही मुमुक्षु में कृतार्थता (स्वस्वरूपानन्दावाप्ति) नहीं आ सकती क्योंकि पदार्थविषयक परोक्षज्ञान अज्ञान का उच्छेदक नहीं हो सकता। महावाक्यजन्य अपरोक्षज्ञान ही अज्ञान का उच्छेदक है। यद्यपि शोधित 'तत्' पदार्थ ब्रह्म में प्रत्यग्रूपता का निश्चय वाक्यार्थबोध से पूर्व ही हो जाता है किन्तु वह परोक्ष ही रहता है। इसलिए श्रवण के बाद मनन एवं निदिध्यासन करने का आदेश श्रुति ने दिया है। अतः पदार्थबोध परोक्ष माना जाता है और वाक्यार्थबोध अपरोक्ष कहा गया है, वही अपरोक्षज्ञान अज्ञान का निवर्तक होगा। अज्ञाननिवृत्ति के पश्चात् ही साधक में कृतकृत्यता आती है[xli] । तर्कबोध के द्वारा सम्पूर्ण अनात्मवस्तु का निषेध कर देने पर भी अद्वैत आत्मतत्त्व का स्फुरण हो जाता है किन्तु वह तर्कोद्भावित होने के कारण परोक्ष ही रहता है। महावाक्यजन्य बुद्धि वृत्ति में अद्वय अखण्ड तत्त्व अपरोक्षरूप से भासित होता है। इसलिए तर्क से होने वाला आपाततः अद्वैतबोध परोक्षमात्र होने के कारण मोक्षरूप फल को नहीं दे सकता, मोक्ष तो महावाक्यजन्य अपरोक्षबोध से ही मिल सकता है[xlii] । जैसे अधम, मध्यम और उत्तम शुद्धि वाले दर्पण में अपना मुख तरतम क्रम से प्रतिभासित होता है वैसे ही यहाँ बुद्धिवृत्तियों में तत्त्व भासता है। मलिन दर्पण में अपना मुख मलिन, स्वच्छ दर्पण में स्वच्छ और स्वच्छतम दर्पण में मुख अत्यन्त स्वच्छ दीखता है वैसे ही बुद्धिवृत्तियों में आत्मतत्त्व के प्रतिभान में अन्तर पड़ जाता है अर्थात् वृत्ति जितनी स्वच्छ होगी, उसमें उतना ही स्वच्छ आत्मतत्त्व प्रतीत होगा[xliii] । अद्वैत वेदान्त के अनुसार आत्मज्ञान की प्रक्रिया में **"तत्त्वमसि"** उपदेशवाक्य के अर्थावबोध के उपरान्त मुमुक्षु साधक वेदान्त के अनुभववाक्य **"अहं ब्रह्मास्मि"** के तात्पर्य का अनुभव कर मोक्ष प्राप्ति करता है। **"तत्त्वमसि"** महावाक्यार्थ का बोध तत्त्वम्पदार्थशोधन पर निर्भर है, तत्त्वम्पदार्थशोधन के उपरान्त 'वह ब्रह्म तुम ही हो' यह अभीष्ट वाक्यार्थ जहदजहद लक्षणा अर्थात् भागत्याग लक्षणा के माध्यम से प्राप्त होता है। अतः महावाक्यों के अर्थ-निर्धारण

के क्रम में महावाक्यों के स्पष्ट और विशेष अर्थबोध के लिए भागत्याग लक्षणा द्वारा महावाक्य के अर्थ-निर्धारण की प्रकिया निरूपणीय हैं।

महावाक्यों में जहदजल्लक्षणा द्वारा वाक्यार्थ निर्धारण -

संक्षेपशारीरककार ने महावाक्यों के अर्थनिर्धारण के क्रम में अखण्डार्थ प्राप्ति हेतु प्रसिद्धि, गौणी एवं लक्षणावृत्ति का विवेचन किया है। वहाँ **"तत्त्वमसि"**[xliv] आदि महावाक्य को जहदजहल्लक्षणा के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ दोनों पदों के अर्थों में से विरोधी विशेषण अंश का परित्याग करके अविरुद्ध विशेष्य अंश अपरोक्ष चैतन्यमात्र का बोध कराने के लिए उभयलक्षणा की प्रवृति स्वीकार की गयी है। इसे ही जहदजल्लक्षणा या भागत्यागलक्षणा (भागं जहाति न जहाति च भागमन्या) कहा जाता है[xlv]। यह वेदान्तसिद्धान्त सम्मत लक्षणा है जिसे सर्वसम्मति से प्रायः सभी वेदान्ताचार्यों ने स्वीकार किया है। यही महावाक्यों के अभीष्टार्थ अखण्डार्थ की प्राप्ति में सक्षम मानी गयी है। सर्वज्ञात्ममुनि ने भी इसे अखण्डार्थ प्राप्ति हेतु मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। सर्वज्ञात्ममुनि कहते हैं कि महावाक्य के अखण्डार्थबोध में वेदान्ताचार्यों ने जहदजहल्लक्षणा को स्वीकृति प्रदान की है। जिस प्रकार **'सोऽयं देवदत्तः'** यह वाक्य तथा इसका मुख्यार्थ **'भूतकालविशिष्ट देवदत्त ही वर्तमानकालविशिष्ट देवदत्त है'** इसके एक अंश (भूतकालविशिष्ट व वर्तमानकालविशिष्ट) में विरोध होने से भूतकालविशिष्ट व वर्तमानकालविशिष्टरूप विरुद्धांश को छोड़कर अविरुद्धांश देवदत्त मात्र को लक्षित कराता है क्योंकि जहदजहल्लक्षणा द्वारा मुख्यार्थ के विरुद्धांश का त्याग और अविरुद्धांश का ग्रहण किया जाता है। अत: इसी प्रक्रिया से **'तत्त्वमसि'** महावाक्य का भी अर्थनिर्धारण किया जाना अभीष्ट है। यहाँ तत् और त्वं दोनों पदों के पदार्थों में अभेद है, किन्तु उस अभेद का विरोध करने वाला है - विशेषणांश भाग और इस विरुद्धांश का परिहार जहदजहल्लक्षणा द्वारा ही सम्भव है। अतः **'तत्त्वमसि'** महावाक्य के मुख्यार्थ परोक्षत्वादिविशिष्ट चैतन्य (तत्) और अपरोक्षत्वादिविशिष्ट चैतन्य (त्वम्) के एक अंश (विशेषण भाग) में विरोध होने से, परोक्षत्वादिविशिष्टत्व और अपरोक्षत्वादिविशिष्टत्व रूप विरुद्धांश को छोड़कर, अविरुद्ध चैतन्य मात्र विशेष्यांश का ग्रहण किया जाता है। जिससे अभीष्ट वाक्यार्थ अखण्डचैतन्यमात्र अर्थ को लक्षित कराया जाता है। अत: प्रत्यगात्मा रूप अखण्डार्थ की बोधक जहदजहल्लक्षणा ही है[xlvi]।

ब्रह्म में परोक्षत्व और प्रत्यगात्मा में दुःखित्व को अज्ञानजन्य कहा गया है। तत्त्वज्ञान के द्वारा जिस पुरुष का अज्ञान नष्ट हो गया है, उसके उक्त दोनों (परोक्षत्व और दुःखित्व) ही अज्ञानकार्य नष्ट हो जाते हैं क्योंकि कारण के न रहने पर कार्य

का रहना सम्भव नहीं है। 'सोऽयं पुमान्' तथा 'सोऽयं देवदत्तः' इत्यादि स्थल में पुरुष के स्वरूप का बोध हो जाने पर भी उसके देशकालादि वैशिष्ट्य की निवृत्ति इसलिए नहीं होती है क्योंकि वे वास्तविक हैं, अज्ञानकल्पित नहीं है, किन्तु ब्रह्म में परोक्षत्वादि और प्रत्यगात्मा में दुःखित्वादि अज्ञान से उत्पन्न माने गए हैं, इसीलिए तत्त्वज्ञान का उदय होते ही उनका रहना असम्भव है। अतः तत्त्वज्ञान से दुःखित्वादि बन्धन-समूह का ध्वंस होना अनिवार्य है। यही तत्त्वज्ञान का सबसे उत्कृष्ट फल है। तत्पश्चात् ही ब्रह्म साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त होता है[xlvii]।

इसके अतिरिक्त अखण्डवाक्यार्थ का ज्ञान होने के पश्चात् तत्त्वज्ञानी में कृतकृत्यता आ जाती है। जीव सदा ब्रह्मरूप ही है, परन्तु मोहजन्य द्वैतप्रपञ्च के कारण उनमें भेद भासता है। वेदान्तवाक्यों के समन्वय द्वारा ब्रह्म की परोक्षता और जीव की परिच्छिन्नता मिट जाती है, तब पुनः जीव-ब्रह्म के अभेद का अपरोक्ष अनुभव होता है। इसके बाद उस तत्त्वज्ञानी के लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। इस स्थिति में 'कृतं कृत्यम्', 'प्रापणीय प्राप्तम्' इन वाक्यों द्वारा वह अपने में सदा कृतकृत्यता का अनुभव करता है[xlviii]। "मुमुक्षु को अद्वैततत्त्व का अपरोक्षानुभव हो जाने के बाद ज्ञानी का शरीरादि में अभिमान नहीं रह जाता है। वह अपने शरीर को आत्मा से पृथक् वैसे ही देखता है और उसमें वैसे ही अभिमान नहीं रखता, जैसे सर्प छोड़ी हुई केंचुली को अपने से पृथक् देखता है और उसमें अभिमान नहीं रखता। जीवन्मुक्त को यह अनुभव होता है कि अब मुझे मोक्ष का अधिगम वैसे ही प्रसिद्ध हो गया, जैसे कि सामान्य जनमानस को जीवन भासता है। अब मैं हथेली पर रखे बिल्वफल की भाँति प्रत्यक्षतः अद्वैत का अनुभव कर रहा हूँ"[xlix]।

महावाक्यों की व्यावहारिक प्रासंगिकता एवं महत्त्व –

महावाक्य वेदान्त के अद्वैत-दर्शन और आत्म-ज्ञान के परिचायक हैं। महावाक्य वेदान्त-दर्शन के गहन दार्शनिक सूत्र हैं, जो जीव (आत्मा) और ब्रह्म की एकता को दर्शाते हैं, जो **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** के शाश्वत संदेश हैं। अतः निष्कर्षरूपेण महावाक्यों की उपादेयता एवं महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है –

- वसुधैव कुटुम्बकम् – महावाक्य का यह उद्घोष है कि "सम्पर्ण विश्व ही परिवार है"। यह सम्पूर्ण मानवता को एक सूत्र में पिरोने का दार्शनिक आधार है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सन्देश संकीर्णता से ऊपर उठकर, सार्वभौमिक भाईचारे और वैश्विक परिवार की भावना को बढाता है।
- भारतीय संस्कृति का मूल आधार – यह "वसुधैव कुटुम्बकम्" का विचार भारतीय संस्कृति के "सर्वजन हिताय" और "विविधता में एकता" के दृष्टिकोण को दर्शाता है, जो भारत की संसद में भी अंकित है।

- अद्वैत ज्ञान की प्राप्ति – यह व्यक्ति को यह समझने में सहायता करते हैं कि वह केवल शरीर या मन नहीं है, अपितु शाश्वत चेतना या ब्रह्म है। ये व्यक्ति को अपने जीवन के वास्तविक प्रयोजन से अवगत कराते हैं। पुरुषार्थ चतुष्ट्य में से धर्म, अर्थ तथा काम में सामन्जस्य स्थापित कर मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त करते हैं।

  - मानसिक शान्ति और ध्यान – इन महावाक्यों का निरन्तर चिन्तन और ध्यान, मन को पवित्र करता है, अन्तर्दृष्टि को बढाता है और परमानन्द की स्थिति की ओर ले जाता है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप सत्, चित् और आनन्द स्वरूप है, अतः यह व्यक्ति का आत्मिक और मौलिक अधिकार है कि वह आनन्दमय में स्थित होकर जीवन यापन करे।

निष्कर्ष रूपेण यह कहा जा सकता है कि महावाक्य वैष्णव और वेदान्त के विचारों का सुन्दर तालमैल प्रस्तुत करते हैं, जो यह सिखाता है कि सत्य एक है, भले ही उसे अलग-अलग नामों से पुकारा जाए। यह सूत्र आज के संघर्षमय विश्व में शान्ति, प्रेम और सहा-अस्तित्व के लिए अत्यन्त तो आवश्यक है ही, साथ ही ये महावाक्य वासनाओं को क्षीण करके, जीव को जीते-जी बन्धन से मुक्ति (जीवनमुक्ति) का मार्ग दिखाते हैं। महावाक्यों के अर्थावबोध से लौकिक श्रेय और पारलौकिक प्रेय (ब्रह्मज्ञान) दोनों को प्राप्त किया जा सकता है - **"शब्दज्ञानं निदानं भवति हि जगत: श्रेयस: प्रेयसश्च"**[1]।

संदर्भिका

[i] बृह.उप. -1/4/10, पृ.सं. 143
[ii] छा. उप. - 6/8/7, पृ.सं. 443
[iii] माण्डू. उप. - 1/2, पृ.सं. 43
[iv] ऐत.उप. - 1/2, पृ.सं. 44
[v] छा.उप. - 3/14/1, पृ.सं. 343
[vi] त्वम्पदार्थविषयं समन्वयं तत्पदार्थविषयं ततः क्रमात्। तस्य शेषमपरं च वर्णयन्नुक्तवानथ महावचोगतम्। 1/560 सं.शा., पृ.सं .643
[vii] शक्नोति सिद्धमवबोधयितुं च वाक्यं शक्नोति कार्यरहितं वदितुं च वाक्यम् । शक्नोत्यखण्डमवबोधयितुं च वाक्यं शक्नोति मुक्तिफलमर्पयितुं च वाक्यम्। 1/560 वहीं, पृ.सं643 .
[viii] 2/1/1, तै.उ., पृ.सं. 241
[ix] 3/6, वहीं, पृ.सं. 143
[x] तत्रावान्तरवाक्यार्थस्तावद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणमहावाक्यार्थान्वयितत्त्वंपदार्थद्वयमेव । तत्र "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" "आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्" इत्यादिनावान्तरवाक्येन साक्षाद् ब्रह्मपदार्थो निरूप्यते। प.प.हि.अनु.वि., पृ. सं113 .

[xi] 2/1/1, तै.उ., पृ.सं. 241

[xii] 3/6, वहीं, 143

[xiii]अनृतजड़परिछिन्नदु:खविरुद्धं वस्तु सत्यज्ञानानन्तादिशब्दै: ब्रह्मशब्दार्थत्वेन निवेद्यते, "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"," आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्" इति च । प.प.हि.अनु.वि., पृ.सं113 .

[xiv] सत्यत्वात् नानृतं ब्रह्म । वहीं, पृ.सं113 .

[xv] यद्रूपेण यन्निश्चितं तद्रूपं न व्यभिचरति तत्सत्यम् । 2/1/1 तै.उ.शा.भा., पृ.सं478 .

[xvi] ज्ञानत्वात् न जड़म् । प.प.हि.अनु.वि., पृ.सं113 .

[xvii] शां.वे.अर्थ.सि.अ., पृ.सं198 .

[xviii] ज्ञानं ज्ञप्तिरवबोध: । 2/1/1, तै.उ.शा.भा., पृ.सं478 .

[xix]अस्तूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखम मात्रमनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति किञ्चन न तदश्नाति कश्चन । 3/8/8, बृ.उ., पृ.सं675 .

[xx] अनन्तत्वात् न परिछिन्नम्, भेदाभावत्रयाभ्यां विरुद्धमित्यर्थ: । प.प.हि.अनु.वि., पृ.सं113 .

[xxi] वृक्षस्य स्वगतो भेद: पत्रपुष्पफलादिभि: । वृक्षान्तरात् सजातीयो विजातीय: शिलादित: । तथा सद्वस्तुनो भेदत्रयं प्राप्तं निवार्यते, ऐक्यावधारणद्वैतप्रतिषेधैस्त्रिभि: क्रमात् । 2/20-21, प.द., पृ. सं89 .

[xxii] तथा आनन्दत्वात् निर्दु:खमिति च निवेद्यते । प.प.हि.अनु.वि., पृ.सं113 .

[xxiii] तस्यैव ब्रह्मण: तथानिवेद्यमानस्य आनन्त्योपपादनाय पञ्चविधानि युक्त्यर्थवादवाक्यानि विधिप्रतिषेध-चोदनार्थशेषभूतस्तुतिनिन्दार्थवादवाक्यवत् सृष्टिस्थितिप्रलयप्रवेशनियमनवादीनि । प.प.हि.अनु.वि., पृ.सं113.

[xxiv] 3/1/1, तै.उ., 343

[xxv] तत्र "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्मेति" । इति सृष्टिस्थितिप्रलयवाक्यानि । प.प.हि.अनु.वि., पृ.सं113 .

[xxvi] शां.वे.अर्थ.सि.अ., पृ.सं201 .

[xxvii] 3/1/1, तै.उ., 343

[xxviii] शां.वे.अर्थ.सि.अ., पृ.सं201 .

[xxix] 3/1/1, तै.उ., 343

[xxx] शां.वे.अर्थ.सि.अ., पृ.सं202 .

[xxxi] 2/6/1, तै.उ., 263

[xxxii] "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" इति प्रवेशवाक्यम् । प.प.हि.अनु.वि., पृ.सं113 .

[xxxiii] 2/8/1, तै.उ., तै.उ., 283

[xxxiv] "भीषास्माद्वात: पवते । भीषोदेति सूर्य:" इत्यादिनियमनवाक्यम् । प.प.हि.अनु.वि., पृ.सं114 .

[xxxv] शां.वे.अर्थ.सि.अ., पृ.सं203 .

[xxxvi] वातादयो हि महार्हा: स्वयमीश्वरा: सन्त: पवनादिकार्येष्वायासबहुलेषु नियता: प्रवर्तन्ते । तद्युक्तं प्रशास्तरि सति, यस्मान्नियमेन तेषां प्रवर्तनम् । तस्मादस्ति भयकारणं तेषां प्रशास्तृ ब्रह्म । यतस्ते भृत्या इव राज्ञोऽस्माद् ब्रह्मणो भयेन प्रवर्तन्ते । तच्च भयकारणमानन्दं ब्रह्म । 2/8/1 तै.उ.शा.भा., पृ.सं. 679

[xxxvii] तस्माद् ब्रह्मणो जातं तेजोऽबन्नादिक्रमेण सर्वम् अतस्तज्जम्, तथा तेनैव जननक्रमेण प्रतिलोमतया तस्मिन्नेव ब्रह्मणि लीयते तदात्मतया श्लिष्यत इति तल्लम् तथा तस्निन्नेव स्थितिकालेऽनिति प्राणिति चेष्टत इति । 3/14/1, छा.उ.शां.भा., पृ.सं138 .

[xxxviii] एतै: पञ्चविधै: सम्भावनार्थवादवाक्यै: तज्जत्वात् तल्लत्वात् तदनत्वात् तत्प्रविष्टत्वात् तन्नियतत्वाच्च तत्तावन्मात्रं जगदिति युक्त्युपबृहितै: ब्रह्मण आनन्त्याद्युपपादने कृते ब्रह्मपदार्थो निश्चितो भवति। ब्रह्मपदार्थगता ज्ञानविपर्यासा विनष्टा भवन्तीति ब्रह्मपदार्थनिरूपणपरावान्तर-वाक्यार्थव्याख्यानम् । प.प.हि.अनु.वि.,पृ. सं114.

[xxxix] शास्त्रं हि प्रत्यगात्मनि अविद्याध्यारोपितमतद्धर्मं निवर्तयत्येव केवलम्, न तु तं कर्मी करोति। लेंग्वेज एण्ड रीलीज, पञ्चप्रक्रिया सहित, पृ.सं. 129
[xl] "शास्त्रं हि प्रत्यगात्मनि अविद्याध्यारोपितमतद्धर्मं निवर्तयत्येव केवलम्, न तु तं कर्मी करोति। लैंग्वेज एण्ड रीलीज, पञ्चप्रक्रिया सहित, पृ. 129
[xli] पदार्थबोधेन कृतार्थता न ते मतिः परोक्षा हि पदार्थगोचरा।
अतो महावाक्यनिबन्धनैव धीः अबोधविच्छेदकारी भविष्यति॥ 3/294॥ सं.शा. पृ. 570
[xlii] तर्कप्रतीतिसमयेऽपि तदद्वितीयं प्रत्यक् परिस्फुरति तत्प्रतिबिम्बितं सत्।
वेदान्तवाक्यजनिताऽद्वयबुद्धिभूमिनिष्ठं पुनः स्फुटतरं भवतीति भेदः॥ 3/306॥ सं.शा. पृ. 581
[xliii] अधममध्यमशुद्धिनि दर्पणे परमशुद्धिनि चाऽऽननमात्मनः।
तरतमक्रमतः प्रतिभासते तदिव तत्त्वमिह प्रत्तिपत्तिषु॥ 3/307॥ वहीं, पृ. 582
[xliv] 6/8/7, छा.उ., पृ. 298
[xlv] वेदेऽपि लाक्षणिकवृत्तिरियं त्रिधेष्टा, यज्ञायुधीति वचने तु जहत्प्रवृत्तिः।
वैश्वानरादिवचनेष्वजहत्प्रवृत्तिः, तत्त्वङ्गिरोरुभयरूपतया प्रवृत्तिः॥ 1/157॥ सं.शा. पृ. 108
[xlvi]जहदजहल्लक्षणा तु मुख्यार्थपरिग्रहे सति मुख्यार्थैकदेशपरित्यागेन शब्दस्यैकदेशान्तरे वृत्तिः; यथा 'सोऽयं देवदत्तः' इति वाक्ये सोऽयमंपदयोः देशकालशबलवाचिनोः देशकालभागपरित्यागेन देवदत्तव्यक्तौ वृत्तिः। तस्माज्जहदजहल्लक्षणया प्रत्यगात्मां बोध्यते। प.प.हि.अनु.वि. पृ. 49
[xlvii] पारोक्ष्यं च ब्रह्मणि प्रत्यगर्थे दुःखित्वं च ध्वान्तसम्भूतमाहुः।
सम्यग्ज्ञानध्वस्तमोहस्य पुंसः प्रध्वंसेते हेत्वभावेऽफलत्वात्॥ 1/238॥ सं.शा. पृ. 289
[xlviii] रूपं तावकमुज्झितद्वयमभूदद्वैतमेवाञ्जसा तच्चाद्वैतमपास्य मोहजनितं पारोक्ष्यमात्मा ह्यभूत्।
एवं वेदशिरः पदान्वयवशादेकत्वमेकान्ततः सिद्धं प्रत्यगनन्तयोरिति तव श्रेयः समाप्तिं गतम्॥ 1/269॥ वहीं, पृ. 329
[xlix] अद्वैतमप्यनुभवामि करस्थबिल्वतुल्यं शरीरमहिनिर्ल्वयनीव वीक्षे।
एवं च जीवनमिव प्रतिभासमानं निःश्रेयसोऽधिगमनं च मम प्रसिद्धम्॥ 4/55॥ सं.शा., पृ. 698
[l] लैंग्वेज एण्ड रीलीज, पञ्चप्रक्रिया सहित, पृ.१२८.

सन्दर्भ ग्रन्थसूची -

1. ईशादि नौ उपनिषद्, हिन्दी अनुवाद सहित, गोरखपुर, गीताप्रेस, संवत् 2060
2. सर्वज्ञात्ममुनि, पञ्चप्रक्रिया, इवान् कोमरेक कृत (Languag and Release) आङ्ग्लानुवादसहित, दिल्ली,मोतीलाल, बनारसीदास, 1985
3. सर्वज्ञात्ममुनि, संक्षेपशारीरकम्, श्रीस्वामीरामानन्दकृत भावदीपिका हिन्दीव्याख्या सहितम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1987
4. सदानन्दयोगीन्द्र, वेदान्तसार, श्रीरामतीर्थविरचिता विद्वन्मनोरञ्जनी सहित, हिन्दी व्याख्याकार आचार्य बद्रीनाथशुक्ल, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 2003
5. सुरेश्वराचार्य, नैष्कर्म्यसिद्धिः, आचार्य चित्त नारायण पाठकः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009
6. शङ्कराचार्य, छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, हिन्दी अनुवाद सहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2009
7. शङ्कराचार्य, ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य, सत्यानन्दी दीपिका सहित, व्याख्याकार, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2008